# जैनदर्शनमें वस्तुका स्वरूप : एक दार्शनिक विश्लेषण

जैनदर्शनमें वस्तुको अनन्तधर्मात्मक और अनेकान्तात्मक उभयरूप माना गया है। एक ही वस्तुमें एक ही साथ अनन्तधर्मोंका पाया जाना वस्तुको अनन्तधर्मात्मकता है और अनन्तधर्मात्मक उसी वस्तुमें परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंका पाया जाना वस्तुकी अनेकान्तात्मकता है। इस कथनका तात्पर्य यह है कि विश्वकी सभी वस्तुयें अपने अन्दर अपने-अपने पृथक्-पृथक् अनन्तधर्मोंकी एक ही साथ सत्ता रख रही हैं व प्रत्येक वस्तुके अपने-अपने उन अनन्तधर्मोंमेंसे प्रत्येक धर्म अपने विरोधी धर्मके साथ ही वहाँ पर रह रहा है।

अनेकान्तशब्दका ऊपर जो "वस्तुमें परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंका पाया जाना" अर्थ किया गया है उसमें अनेकशब्दका तात्पर्य दो संख्यासे है। इस तरह अनेकान्त शब्दका वास्तविक अर्थ "वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंका एक ही साथ पाया जाना" होता है। यह अर्थ वास्तविक इसलिये है कि परस्पर विरोधिता दो धर्मोंमें ही संभव है, तीन, चार आदि संख्यात, असंख्यात व अनन्त धर्म मिलकर कभी परस्पर विरोधी नहीं होते हैं, कारण कि एक धर्मका विरोधी यदि दूसरा एक धर्म है तो शेष सभी धर्म परस्पर विरोधी उन दो धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मके नियमसे अविरोधी हो जावेंगे।

उपर्युक्त कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि वस्तुका अनन्तधर्मात्मक होना एक बात है और उसका (वस्तुका) अनेकान्तात्मक होना दूसरी बात है। यही कारण है कि जैनेतर सभी दर्शनकारोंके लिये वस्तुको अनन्तधर्मात्मक माननेमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि पृथ्वीमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श रूप धर्मचतुष्टयकी एक ही साथ सत्ताको वे भी स्वीकार करते हैं। परन्तु वे (जैनेतर दर्शनकार) वस्तुको अनेकान्तात्मक माननेमें हिचकिचाते हैं। जैन और जैनेतर दर्शनकारोंके मध्य मुख्यतया अन्तर यही है कि जहाँ उक्त प्रकारके अनेकान्तकी मान्यताके आधारपर जैनदर्शन अनेकान्तवादी कहलाता है वहाँ जैनेतर सभी दर्शन उसका विरोध करनेके कारण एकान्तवादी कहलाते हैं।

इस कथनका तात्पर्य यह है कि परस्पर अविरोधी अनन्त धर्मोंकी एक ही साथ एक ही वस्तुमें सत्ता जैन और जैनेतर सभी दर्शनोंमें मान्य कर ली गयी है। परन्तु परस्परविरोधी दो धर्मोंकी एक ही साथ एक ही वस्तुमें सत्ता जिस प्रकार जैन दर्शनमें मान्य की गयी है उस प्रकार जैनेतर दर्शन उसे मान्य करनेके लिये तैयार नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि परस्परविरोधी दो धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मको कोई एक दर्शन स्वीकार करता है और उससे अन्य दूसरे धर्मको दूसरा दर्शन स्वीकार करता है लेकिन दोनों ही दर्शन अपनेको मान्य धर्मके विरोधी धर्मको अस्वीकृत कर देते हैं। जैसे सांख्यदर्शन वस्तुमें नित्यताधर्मको स्वीकार करता है लेकिन अनित्यताधर्मका वह निषेध करता है। इसी प्रकार बौद्धदर्शन वस्तुमें अनित्यताधर्मको स्वीकार करता है लेकिन नित्यताधर्मका वह निषेध करता है। जबकि जैनदर्शन वस्तुमें नित्यता और अनित्यता दोनों ही धर्मोंको स्वीकार करता है।

वस्तुके अनन्त धर्मात्मक होने व उसमें (वस्तुमें) उन अनन्त धर्मोंमेंसे प्रत्येक धर्मके अपने विरोधी धर्मके साथ ही रहनेके कारण प्रत्येक वस्तुमें परस्परविरोधी धर्मयुगलके अनन्त विकल्प हो जाते हैं। यही कारण है कि जैन दर्शनमें प्रत्येक वस्तुगत अनन्त धर्म सापेक्ष परस्परविरोधी धर्मयुगलके अनन्तविकल्पोंके आधार पर अनन्तसप्तभंगियोंकी स्थितिको स्वीकार कर लिया गया है। यथा—

"नन्वेकत्र वस्तुन्यनन्तानां धर्माणामभिलापयोग्यानामुपगमादनन्ता एव वचन-मार्गाः स्याद्वादिनां भवेयुर्न पुनः सप्तैव, वाच्येयत्तात्वाद्वाचकेयत्तायाः। ततो विरुद्धैव सप्तभंगीति चेन्न,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधीयमाननिषिध्यमानधर्मविकल्पापेक्षया तदविरोधात्। "प्रतिपर्यायं सप्तभंगी वस्तुनि" इति वचनात्। तथानन्ताः सप्तभंग्यो भवेयुरित्यपि नानिष्टम्।" ( श्लोकवा०, सूत्र ६, वा० ५२ के आगे सप्तभंगी प्रकरण)

इस उद्धरणका भाव यह है कि जैनदर्शनमें वस्तुगत परस्परविरोधी धर्मद्वयके आधारपर सप्तभंगी को मान्यता दी गयी है। इसपर कोई यह आपत्ति करता है कि एक वस्तुमें कथन करने योग्य जब अनन्त धर्म विद्यमान हैं तो इन सब धर्मोंका कथन करनेके लिये स्याद्वादियों (जैनों) के सामने अनन्तसंख्याक वचनमार्गोंकी प्रसक्ति होती है, केवल सात ही वचनमार्गोंकी नहीं, क्योंकि जितने वाच्य हो सकते हैं उतने ही वाचक होने चाहिये, अतः सप्तभंगीकी मान्यता असंगत है।

इस आपत्तिका उक्त उद्धरणमें जो कुछ समाधानके रूपमें लिखा गया है उसका भाव यह है कि सप्तभंगीकी मान्यता विधीयमान और निषिध्यमान धर्मद्वयके विकल्पोंके आधारपर ही जैनदर्शनमें स्वीकृत की गयी है इसलिए एक ही वस्तुमें विद्यमान अनन्तधर्मोंमेंसे प्रत्येक धर्मको लेकर विधीयमान और निषिध्यमान धर्मद्वयके विकल्पोंके आधारपर जैन दर्शनमें सप्तभंगीको स्थान प्राप्त हो जानेसे अनन्तभंगीके बजाय अनन्त-सप्तभंगीकी स्वीकृति स्याद्वादियों (जैनों) के लिए अनिष्ट नहीं है।

इस प्रकार वस्तुगत अनन्तधर्मसापेक्ष परस्परविरोधी धर्मद्वयके प्रत्येक वस्तुमें निष्पन्न अनन्तविकल्पोंमेंसे आचार्य श्रीअमृतचन्द्रने समयसारके स्याद्वादाधिकार प्रकरणमें अनेकान्तका स्वरूप प्रदर्शित करते हुए कतिपय विरोधी धर्मद्वयविकल्पोंकी निम्न प्रकार गणना की है—

"यदेव तत् तदेवातत्, यदेवैकं तदेवानेकन्, यदेव सत् तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्य-मित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्त।:"

अर्थ—जो ही वह है वही वह नहीं है, जो ही एक है वही एक नहीं है अर्थात् अनेक हैं, जो ही सत् है वही सत् नहीं है अर्थात् असत् है, जो ही नित्य है वही नित्य नहीं है अर्थात् अनित्य है इस प्रकार एक ही वस्तुके वस्तुत्व (स्वरूप) को निष्पादक परस्पर विरोधी शक्तिद्वयका प्रकाशन करना अनेकान्त कहलाता है।

अनेकान्तके इसमें चार विकल्प बतलाये हैं। इन चारों विकल्पोंमेंसे "जो ही वह है वही वह नहीं है" इस विकल्पका स्पष्टीकरण इस प्रकार जानना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् आकृति प्रकृति और विकृतिके आधारपर ही विश्वमें अपना अस्तित्व जमाये हुए हैं। आकृतिसे वस्तुकी द्रव्यरूपता (प्रदेशवत्ता) का ग्रहण होता है, प्रकृतिसे उसकी गुणरूपता (स्वभावशक्ति) का ग्रहण होता है और विकृतिसे उसमें होनेवाली परिणति (पर्याय) का ग्रहण होता है। जैसाकि आचार्यश्री कुन्दकुन्दने प्रवचनसार ग्रन्थके ज्ञेयाधिकारकी गाथा १ में दर्शाया है। यथा—

अत्थो खलु दव्वमयो दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जायाः पज्जयमूढ़ा हि परसमयाः॥

अर्थ—अर्थ अर्थात् पदार्थ यानी वस्तु द्रव्यरूप है अर्थात् किसी-न-किसी आकृतिको धारण किए हुए है, द्रव्यमें अपनी गुणरूपता (स्वभावशक्ति) पायी जाती है तथा द्रव्य और गुण दोनों ही परिणमन अर्थात् पर्यायरूपताको धारण किए हुए हैं। लोकमें जितना भी परसमय पाया जाता है वह सब पर्यायोंमें ही रमकर मूढ़ताको प्राप्त हो रहा है।

प्रत्येक वस्तुकी आकृति अर्थात् द्रव्यरूपता (प्रदेशवत्ता), प्रकृति अर्थात् स्वभावशक्तिरूप गुणरूपता और विकृति अर्थात् परिणति क्रियारूप पर्यायरूपता प्रतिनियत है अर्थात् एक वस्तुकी जो आकृति, प्रकृति और विकृति है वह त्रिकालमें कभी भी दूसरी वस्तुकी न तो हुई है और न हो सकती है। अतः इस स्थितिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधारपर ही जैनदर्शनमें यह सिद्धान्त मान्य किया गया है कि जो ही वस्तु वह है वही वस्तु वह नहीं है।

उपर्युक्त कथनका तात्पर्य यह है कि विश्वमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल नामसे छह प्रकारकी वस्तुएँ विद्यमान हैं। इनमें जीव नामकी वस्तुएँ अनन्तानन्त हैं, पुद्गल नामकी वस्तुएँ भी अनन्तानन्त हैं। धर्म, अधर्म और आकाश नामकी वस्तुएँ एक, एक हैं तथा काल नामकी वस्तुएँ असंख्यात हैं। ये सब वस्तुएँ अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् आकृति, प्रकृति और विकृतिको धारण करके ही लोकमें रह रही हैं। जीव नामक वस्तु कभी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालकी आकृति, प्रकृति और विकृतिको धारण नहीं करती है। पुद्गल नामकी वस्तु कभी जीव, धर्म, अधर्म आकाश और कालकी आकृति, प्रकृति और विकृतिको धारण नहीं करती है। और यही बात धर्म, अधर्म, आकाश और काल नामकी वस्तुओंमें भी समझना चाहिए। इतना ही नहीं, एक जीवनामक वस्तु कभी दूसरी जीवनामक वस्तुकी आकृति, प्रकृति और विकृतिको धारण नहीं करती है व एक पुद्गलनामक वस्तु भी कभी दूसरी पुद्गलनामक वस्तुकी आकृति, प्रकृति और विकृतिको धारण नहीं करती है। यहाँ तक कि जीव और पुद्गलका तथा दो आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त पुद्गलोंका परस्पर मेल (मिश्रण) होनेपर भी ये कभी एकत्वको प्राप्त नहीं होते हैं। यह बात दूसरी है कि उक्त वस्तुओंके परस्पर संयोग अथवा मिश्रणसे एक दूसरेमें परिणमन अवश्य हुआ[1] करते हैं। लेकिन वे भी परिणमन उनके अपने-अपने रूप ही हुआ करते हैं। कभी एक-दूसरे रूप नहीं होते "जो ही वह है वही वह नहीं है" इस सिद्धान्तकी मान्यताका ही यह परिणाम है कि आचार्य कुन्दकुन्दने समयसारग्रन्थके कर्तृ-कर्माधिकार प्रकरणमें निम्नलिखित गाथाओं द्वारा आत्मा और पुद्गलमें पररूप परिणतियोंका निषेध किया है—

"णवि परिणमइ ण गिण्हइ उप्पज्जइ ण परदब्बपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥७६॥
णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदब्बपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥७७॥
ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदब्बपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंत ॥७८॥
णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदब्बपज्जाए।
पुग्गलदब्बं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥७९॥"

इन गाथाओंका भाव यह है कि आत्मा पुद्गल कर्मको, अपने परिणामको और पुद्गल कर्मके फलको जानता हुआ भी परद्रव्यकी पर्यायरूपसे न परिणमन करता है, न उन्हें स्वीकार करता है और न उनमें उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी जीवपरिणामको, अपने परिणामको और अपने परिणामके फलको नहीं जानता हुआ भी परद्रव्यकी पर्याय रूपसे न परिणमन करता है, न उन्हें स्वीकार करता है और उनमें उत्पन्न होता है।

इसी तरह "जो ही वह है वही वह नहीं है" इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर ही आचार्य श्री कुन्दकुन्दने समयसारके कर्तृ-कर्माधिकार प्रकरणकी निम्नलिखित गाथाका प्रणयन किया है—

"जो जह्मि गुणे दब्बे सो अण्णह्मि ण संकमदि दब्बे।" (गाथा १०३ का पूर्वार्द्ध)

इसकी टीका आचार्य श्री अमृतचन्द्रने निम्न प्रकारकी है—

'इह किल यो यावान् कश्चित् वस्तु विशेषो यस्मिन् यावति कस्मिश्चिच्चि-दात्मनि-अचिदात्मनि वा

१. समयसार, गाथा ८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्ये, गुणे च स्वरसत एवानादित एव वृत्तः स खलु-अचलितस्य वस्तुस्थितिसीम्नो भेत्तुमशक्यत्वात्तस्मिन्नेव वर्तते न पुनः द्रव्यान्तरं गुणान्तरं वा संक्रामेत् ।"

गाथा और टीकाका भाव यह है कि कोई भी वस्तु सर्वदा अपनी ही द्रव्यरूपता और अपनी ही गुणरूपतामें वर्तमान रहती है, त्रिकालमें कभी भी दूसरी वस्तुकी द्रव्यरूपता व गुणरूपतामें संक्रमण नहीं करती है ।

इसी प्रकार उक्त सिद्धान्तके आधारपर ही आचार्य श्री अमृतचन्द्रके निम्नलिखित कथनकी संगति बैठती है—

"ततः सर्वत्रापि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्यात्मनि लोके ये यावन्तः केचनाप्यर्थास्ते सर्व एव स्वकीयद्रव्यान्तर्मग्नस्वधर्मचक्रचुंबिनोऽपि परस्परमचुंबिनोऽत्यन्तप्रत्यासत्तावपि नित्यमेव स्वरूपादपतन्तः पररूपेणापरिणमनादनष्टानन्तव्यक्तित्वाट्टङ्कोत्कीर्णा इव तिष्ठन्तः" (समयसार गाथा ३ की आत्मख्यातिटीका) ।

अर्थ—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव द्रव्यमय संपूर्ण लकमें जितने परिमाणमें जो कुछ पदार्थ हैं वे सभी अपने-अपने धर्म समूहका चुम्बन करते हुए भी एक दूसरे पदार्थका चुम्बन नहीं कर रहे हैं, यद्यपि सभी पदार्थ एक दूसरे पदार्थसे अत्यन्त संयुक्त हो रहे हैं तो भी वे कभी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होते—इस तरह पररूपसे परिणत न होनेके कारण उनकी नियत परिमाणरूप अनन्तता कभी नष्ट नहीं हो सकती है इसलिए जैसे टांकीसे ही उत्कीर्ण किये गये हों ऐसे ही अपनी-अपनी अलग-अलग सत्ता रखते हुए नियत अनन्त संख्याके रूपमें ही वे सब रह रहे हैं ।

इस तरह कहना चाहिए कि "विश्वके जितने परिमाणमें अनन्तसंख्याके पदार्थ हैं वे उतने परिमाणमें ही अनादिसे अनन्तकाल तक रहनेवाले हैं उनकी उस संख्यामें कभी भी घटा बढ़ी नहीं होती है" इस मान्यताकी पुष्टि "जो ही वह है वही वह नहीं है" इस अनेकान्तकी स्वीकृतिके आधारपर ही हो सकती है ।

आचार्य श्री अमृतचन्द्रने दूसरे प्रकारका अनेकान्त यह बतलाया है कि "जो ही एक है वही एक नहीं है अर्थात् अनेक है" । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि वस्तुकी द्रव्यात्मकता, गुणात्मकता और पर्यायात्मकताके आधारपर "अत्थो खलु दव्वमयो" इत्यादि गाथाके अनुसार प्रत्येक वस्तुके अलग-अलग प्रकार से दो दो अंश निर्धारित होते हैं । उनमें एक प्रकारसे दो अंश हैं—द्रव्यांश और गुणांश, दूसरे प्रकारसे दो अंश हैं—द्रव्यांश और पर्यायांश तथा तीसरे प्रकारसे दो अंश हैं—गुणांश और पर्यायांश ।

प्रत्येक वस्तुका द्रव्याँश एक ही रहा करता है लेकिन इसमें गुणांश नाना रहा करते हैं । जैसे आत्मा एक वस्तु है । परन्तु उसमें ज्ञानदर्शन आदि नाना गुणोंका सद्भाव है । इसी तरह पुद्गल एक वस्तु है । परन्तु उसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि नाना गुणोंका सद्भाव है । इसी प्रकार दूसरे प्रकारसे यों कहा जा सकता है कि वस्तुका द्रव्यांश हमेशा एक ही रहा करता है परन्तु उसमें बदलाहट होती रहती है जिससे पर्यायांश अनेक हो जाते हैं । जैसे आत्मा यद्यपि नियत असंख्यात प्रदेशी एक द्रव्य है परन्तु छोटे-बड़े शरीरके अनुसार उसकी छोटी बड़ी आकृति होती रहती है । इसी तरह प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान उसके अपने-अपने नाना गुणोंमेंसे प्रत्येक गुण भी अपनेमें परिवर्तन करता रहता है । जैसे आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला नियत है परन्तु उसका वह ज्ञानरूप स्वभाव यथायोग्य मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय और केवलके भेदसे पाँचरूपसे परिणमन कर सकता है । इसी तरह मति आदि ज्ञान भी यथायोग्य इन्द्रियादिक साधन व विषयभूत पदार्थकी विविधताके आधारपर परिणमन करते रहते हैं । इस प्रकार आत्माका एक ज्ञानरूप स्वभाव भी उपर्युक्त



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकारसे नाना पर्यायोंमें बदलता रहता है। इस प्रकार वस्तुके द्रव्यांशकी एकता और उसके गुणांशकी अनेकताके आधार पर, वस्तुके द्रव्यांशकी एकता और उसके पर्यायांशकी अनेकताके आधार पर तथा वस्तुके गुणांशकी एकता और उसके पर्यायांशकी अनेकताके आधारपर जैनदर्शनमें यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि जो ही एक है वही एक नहीं हैं अर्थात् अनेक है।

आचार्यश्री अमृतचन्द्रने तीसरे प्रकारका अनेकान्त यह बतलाया है कि "जो ही सत् है वही सत् नहीं है अर्थात् असत् है"। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि प्रत्येक वस्तुकी सत्ताका निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आधार पर हुआ करता है। इनमेंसे द्रव्यके आधारपर वस्तुकी सत्ताका निर्णय इस प्रकार होता है कि यद्यपि घटरूपसे परिणत पुद्गलद्रव्य पटरूपसे परिणत होनेकी योग्यता रखते है, परन्तु जिस समय जो पुद्गलद्रव्य घटरूपसे परिणत हो रहे हैं उस समय वे पटरूपसे परिणत नहीं हो रहे हैं इसलिये जिस समय जिस वस्तुमें घटरूपताका सद्भाव है उस समय उस वस्तुमें पटरूपताका अभाव है। इस तरह घटरूपसे परिणत वस्तु घटरूपसे ही सत् है पटरूपसे वह सत् नहीं है अर्थात् असत् है। क्षेत्रके आधारपर वस्तुकी सत्ताका निर्णय इस प्रकार होता है कि जो वस्तु जिस समय आकाशके जिन और जितने प्रदेशोंपर अवस्थित है वह वस्तु उस समय आकाशके उन और उतने प्रदेशों पर ही सत् कही जा सकती है उन और उतने प्रदेशोंसे अतिरिक्त अन्य सभी आकाशप्रदेशोंपर वह वस्तु उस समय असत् ही कही जायगी। कालके आधारपर वस्तुकी सत्ताका निर्णय इस प्रकार होता है कि यद्यपि प्रत्येक वस्तु स्वभावसे त्रैकालिक सत्स्वरूप है परन्तु जो वस्तु जिस समय जिन कालद्रव्योंसे संयुक्त है उस समय वह वस्तु उन कालाणुओंकी अपेक्षा ही वर्तमान रूपमें सत् है शेष अन्य सभी कालाणुओंकी अपेक्षा उस समय वह वर्तमान रूपमें सत् नहीं है अर्थात् असत् है। भावके आधारपर सत्ताका निर्णय इस प्रकार होता है कि जो वस्तु जिस समय अपनी जिस अवस्था (पर्याय) को धारण किये हुए है उस समय वह वस्तु उस अवस्था (पर्याय) की अपेक्षा सत् है शेष अन्य सम्भव सभी पर्यायोंकी अपेक्षा वह सत् नहीं अर्थात् असत् है। इन सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आधारपर जो प्रत्येक वस्तुकी सत्ताका निर्णय होता है वह व्यवहारकालको समय, आवली, मुहूर्त, घड़ी, घंटा, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदिके रूपमें विभक्त करके उनके आधार पर ही होता है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्रने चौथे प्रकारका जो अनेकान्त बतलाया है वह यह है कि "जो ही नित्य है वही नित्य नहीं है अर्थात् अनित्य है"। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि प्रत्येक वस्तु अपनी आकृति अर्थात् द्रव्यरूपता (प्रदेशवत्ता) और प्रकृति अर्थात् गुणरूपता (स्वभावशक्ति) की अपेक्षा शाश्वत बनी हुई है तथा विकृति अर्थात् पर्यायरूपता (परिणति—क्रिया) की अपेक्षा व्यवहारकालके भेद—समय, आवली, मुहूर्त, घड़ी, घंटा, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदिके रूपमें विभक्त होकर अशाश्वत बनी हुई है। यही कारण है कि जैनदर्शनमें प्रत्येक वस्तुको द्रव्यरूपता और गुणरूपताके आधारपर ध्रौव्यस्वभाववाली तथा पर्यायरूपताके आधारपर उत्पाद और व्यय स्वभाववाली माना गया है। इनमेंसे ध्रौव्यस्वभाव वस्तुकी नित्यताका चिह्न है और उत्पाद और व्ययरूप स्वभाव उसकी अनित्यताका चिह्न है।

जिस प्रकार आचार्य श्री अमृतचन्द्रने वस्तुको अनेकान्तात्मक सिद्ध करते हुए परस्परविरोधी धर्मद्वयके आधारपर अनेकान्तके तत्-अतत्, एक-अनेक, सत्-असत् और नित्य-अनित्य ये चार विकल्प बतलाये हैं उसी प्रकार उन्होंने समयसारकी गाथा १४२ की टीका करते हुए आत्माका अवलम्बन लेकर परस्परविरोधी धर्मद्वयके आधारपर बद्ध-अबद्ध, मोही-अमोही, रागी-अरागी, द्वेषी-अद्वेषी आदि विविध प्रकारके और भी विकल्प बतला दिये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह हम देखते हैं कि विश्वकी प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक सिद्ध होती है और वह अनन्त-धर्मात्मक वस्तु परस्परविरोधी धर्मद्वयके अनन्त विकल्पोंके आधारपर विविध प्रकारसे अनेकान्तात्मक सिद्ध होती है।

मैंने इस लेखमें वस्तुकी अनन्तधर्मात्मकता और अनेकात्मकतापर यथाशक्ति प्रकाश डाला है। आशा है इससे सर्वसाधारणको जैन तत्वज्ञानको समझनेकी दिशा प्राप्त होगी। वास्तवमें आज जैन तत्त्वज्ञानका प्रत्येक अंग विवादग्रस्त बन गया है। इसमें मैं सारा दोष विद्वानोंका मानता हूँ। हमेशा विद्वान ही तत्त्व-ज्ञानके संरक्षक रहे हैं। आज भी विद्वानोंको ऐसा ही प्रयास करना चाहिए। यद्यपि आजका प्रत्येक विद्वान कहता है कि मेरा प्रयास तत्त्वसंरक्षणके लिये ही है। परन्तु यह प्रयास कैसा, जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द, समन्त-भद्र, उमास्वाति, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द आदि महर्षियोंके वचनोंमें भी परस्पर विरोध दीखने लग जाय। प्रत्येक विद्वानको इस प्रश्न पर गहराईके साथ ही दृष्टिपात करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org